प्रथम अध्याय :
हिंदी नवजागरण की अवधारणा

1.1 नवजागरण

1.2 भारतीय नवजागरण और यूरोपीय पुनर्जागरण में भिन्नता

1.3 लोकजागरण और नवजागरण में भिन्नता

1.4 नवजागरण के प्रेरक तत्व

1.5 भारतीय नवजागरण (1857 के संदर्भ में)

1.6 हिंदी नवजागरण का परिप्रेक्ष्य

अध्याय प्रथमः

हिंदी नवजागरण की अवधारणा

1.1 नवजागरण :

जागरणः-

जागरण का अर्थ है जागृत होना, नींद से जागना, सुषुप्त जनमानस में नवचेतना, स्वतन्त्र चिंतन, ऐसी चेतना जो पहले कभी न आई हो। यहाँ जागरण का अर्थ नींद से शारीरिक रुप से जागना नहीं, अपितु मानसिक रुप से जागना है। ''पारिभाषिक रुप से जागरण शब्द संस्कृत भाषा के नव उपसर्ग 'जागृ' धातु में ल्युट प्रत्यय के योग से व्युत्पन्न है।''[1] इसका अभिप्राय है जागृत अवस्था या जागते रहने की चेतना। ''लाक्षणिक अर्थ में 'जागरण' वह अवस्था है जिसमें किसी जाति, देश, समाज आदि को अपनी वास्तविक परिस्थितियों और उनके कारणों का ज्ञान हो जाता है और वह उन्नति और रक्षा के लिए सचेष्ट हो जाता है।''[2]

जागरण की कोई समय सीमा या कालखंड निर्धारित नहीं की जा सकती। जागरण किसी भी समय, किसी भी परिस्थितियों में हो सकता है। जब मनुष्य तत्कालीन समाज, युग और परिस्थितियों में जकड़ी हुई मानसिक रुढ़ियों से स्वतन्त्र होकर आत्मविवेक से निर्णय लेता है, तो उस अवस्था को जागरण कहा जाता है।

नवजागरण : परिभाषा और स्वरूप

परिभाषाः-

नवजागरण के लिए प्रायः कई पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जैसे- पुनर्जागरण, पुनरुत्थान, नवजीवन, नवजागृति, नवोत्थान आदि। परन्तु यदि आधुनिक संदर्भ में देखें तो अंग्रेजी शब्द रिनेसाँ का पर्यायवाची ही नवजागरण को माना जाता

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.18

2 वहीं, पृ.18

है। भिन्न-भिन्न देशों में नवजागरण की अवधारणा का विकास, विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों, कालों और विभिन्न रुपों में हुआ है। नवजागरण एक अवधारणा है। नवजागरण की कल्पना के प्रचार का श्रेय स्विस विचारक बर्कहार्ट को है। ''जैकब बुर्कहार्ट की कृति 'सिविलिजेशन ऑफ दि रिनेसाँ इन इटली' (इटली की पुनर्जागरण कालीन सभ्यता) के प्रकाशन 1860 के साथ यह मान्यता अपने चरम शिखर पर पहुँच गई।''[1]

यद्यपि ऐसा माना जाता है कि रिनेसाँ शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांसिसी इतिहासकार 'मिशेसेट' ने 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में किया। लेकिन डॉ. मीरा रानी बल के अनुसार ऐसा माना जाता है कि ''आधुनिक संदर्भ और अर्थ में 'रेनेसाँ' शब्द का प्रयोग संभवतः पहली बार बाल्जाक ने 1829ई0 में अपनी नाट्य कृति "Blade Sceaux" में किया था।''[2]

नवजागरण : स्वरूप

रिनेसाँ प्रायः पश्चिमी यूरोप जिसमें इटली, फ्रांस, ब्रिटेन, स्पेन, जर्मनी जैसे देश आते हैं इनकी सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति का काल माना जाता है। इस काल में कला, संगीत, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में परिवर्तन हुआ। सर्वप्रथम पुनर्जागरण का आरम्भ इटली से माना जाता है। इसी संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि- ''सोलहवीं सदी में इटली के लोगों ने नए युग को ला रिनास्विता (पुनर्जन्म) कहना शुरु किया। अठारहवीं सदी में फ्रांस के विद्वानों ने उसे रेनैसान्स कहा। वहाँ से यह शब्द अंग्रेजी में आया। इटली के लोगों ने संस्कृति के पुनर्जन्म की बात इसलिए सोची थी कि तीसरी, चौथी, पाँचवीं सदियों में जर्मन हमलावरों ने उनकी प्राचीन रोमन सभ्यता का नाश कर दिया था। अब वह सभ्यता मानो नए सिरे से

---

1 (सं.) पार्थ सारथि गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001, पृ.1

2 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.19-20

जन्म ले रही थी। इसलिए पुनर्जन्म की बात उनके मन में आई।''[1] और इटली की भाँति अन्य देशों ने भी नई सभ्यता के युग को पुनर्जन्म कहा।

यूरोपीय सन्दर्भ में यदि देखें तो यूरोप में नवजागरण की जगह पुनर्जागरण अधिक तर्कसंगत मालूम पड़ता है। यूरोप के रिनेसाँ को पुनर्जागरण अथवा पुनर्जन्म कहने का मुख्य कारण यह है कि यूरोप ने लम्बे अँधकार युग और सामंती मध्यकाल से छुटकारा पाया था। पुनर्जागरण की परिभाषा यूरोपीय संदर्भ में हिन्दी विश्वकोष (नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी) ने दी है- ''पुनर्जागरण का अर्थ पुनर्जन्म होता है। मुख्यतः यह यूनान और रोम के प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान की पुनः प्रतिष्ठा का भाव प्रकट करता है। यूरोप में मध्य युग की समाप्ति और आधुनिक युग का प्रारंभ इसी समय से माना जाता है।''[2] 14वीं सदी के आरम्भ तक यूरोप में प्राचीन रोमन साम्राज्य के विनाश से उत्पन्न अव्यवस्था और गडबड़ी में शांति आ चुकी थी। यूरोपीय संस्कृति में एक नए जीवन का संचार हो रहा था। धर्म, दर्शन, कला, विज्ञान, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत आदि के नए-नए अन्वेषण हुए। नई सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना का संचार होने लगा था। जिसका प्रथम उन्मेष इटली में दिखाई पड़ता है। ''इस प्रकार यूरोप का एक प्रकार से नया जन्म हुआ और इसी कारण उस युग को नवजन्म या पुनर्जन्म के पर्यायभूत नवजागरण या पुनर्जागरण का अभिधान प्रदान किया गया है।''[3]

यूरोप में पुनर्जागरण के कारणों का उल्लेख करते हुए पार्थ सारथि गुप्ता ने कहा है,'' सामान्यतः तुर्कों के हाथों कुस्तुनतुनिया की पराजय की तिथि (सन् 1453) से यूरोप में पुनर्जागरण का आरंभ माना जाता है। जिसके बाद यूनान के विद्वान

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1996, पृ.192

2 हिन्दी विश्वकोशः खंड-7, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ.240 उद्धृत डॉ. प्रदीप सक्सेना, 1857 और भारतीय नवजागरण, आधार प्रकाशन पंचकूला, 1996, पृ.73

3 डॉ. अमरनाथ, हिन्दी भाषा की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.397

शरणार्थी के रुप में इटली चले गये और जाते समय अपने साथ बहुमूल्य यूनानी साहित्य भी लेते गए जो यूरोप के लिए दीर्घकाल से लुप्त हो चुका था।''[1]

इसी बात को डॉ. रामविलास शर्मा ने इस ढंग से कहा है, ''पाँचवी ईस्वी सदी के उत्तरार्ध में रोमन साम्राज्य ध्वस्त हो गया, यूरोप का प्राचीन काल समाप्त हुआ और मध्यकाल आरंभ हुआ। पंद्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक लगभग एक हजार साल तक, यह मध्यकाल बना रहता है। फिर पुनर्जागरण काल आता है और यूरोप के इतिहास का आधुनिक काल शुरु होता है। यूरोप में सभी देशों का आर्थिक विकास न तो प्राचीन काल में एक सा था, न मध्यकाल में। प्राचीन काल में इटली नगर सभ्यता का केन्द्र था, जर्मनी और ब्रिटेन जैसे देशों के लोग अभी गण समाजों वाला जीवन बिता रहे थे।''[2]

14वीं सदी के अंतिम दशक से ही ग्रीक साहित्य लोकप्रिय होने लगा। देशी भाषाओं में ग्रंथों का संग्रह होने लगा। व्यक्ति-स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा हुई। चर्च का प्रभाव घटने लगा। मनुष्य में ईश्वर के स्थान पर व्यक्ति को समझने की जिज्ञासा पैदा हुई। धर्म की अपेक्षा विज्ञान का महत्त्व बढ़ा। संन्यासियों के स्थान पर बुद्धिजीवियों का महत्त्व बढ़ा। भावना का स्थान तर्क ने लिया। धर्म और सामंती रुढ़ियों में जकड़ी जनता के भीतर वैज्ञानिक चेतना का प्रसार होता है। समाज-सुधार के माध्यम से जनता के भीतर वैज्ञानिकता का समावेश होता है। समस्त यूरोप में एक नई क्रान्ति आती है। ''संक्षेप में सामंतवाद और धार्मिक सत्ता के कठोर नियंत्रण से मुक्ति, व्यक्तिवाद, भौतिकवाद, वैज्ञानिक जिज्ञासा, सचेत रुप से समाज सुधार के प्रयास,

---

1 (सं.) पार्थ सारथि गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001, पृ.02

2 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1996, पृ.189

बुद्धिवाद, प्रशासनिक, न्यायिक सुधार, नवीन जीवन शैली, नयी संस्कृति और नयी दुनिया की ओर प्रयास आदि नवजागरण की सामान्य विशेषताएँ हैं।''[1]

पुनर्जागरण का यूरोप के अन्य देशों पर भी प्रभाव पड़ा। जिसके कारण यूरोप में औद्योगिक क्रांति की शुरुआत हुई। इसी कारण से धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, विज्ञान एक नए युग में प्रवेश कर सके। यूरोपीय रिनेसाँ एक विशिष्ट काल 1300ई0 से 1600ई0 के मध्य घटित हुआ। यह एक बौद्धिक-सांस्कृतिक आंदोलन है। यह आंदोलन कुछ ऐतिहासिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का विकास मात्र है, जो 9वीं, 10वीं अथवा 12वीं शताब्दियों में घटित हो चुकी थी। उदाहरण के लिए 'करोलिजयाई पुनर्जागरण (9वीं सदी) जिसके बाद लैटिन का पठन-पाठन आरम्भ हुआ। जोकि पाँचवीं और छठीं सदी के बाद से समाप्त हो चुका था। 12वीं सदी का मानवतावादी विचारों के विकास का आंदोलन जिसमें पेरिस, बोलिन और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय स्थापित हुए। पुनर्जागरण को हम संक्रांति काल कह सकते हैं जिसमें कुछ मध्यकालीन ऐतिहासिकता तो थी ही साथ-साथ आधुनिकता की अपरिमित संभावनाएँ भी बाकी थीं। इसी सन्दर्भ में 'पार्थ सारथि गुप्ता' कहते हैं- ''यूरोप में पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा परस्पर संबंधित परिवर्तनों का युग रही है। इस सांस्कृतिक नवोत्थान के अलावा जिसे हम पुनर्जागरण कहते हैं, इसी दौर में यूरोपीय राज्य प्रणाली का उदय हुआ था।''[2]

इस काल में यूरोप ने अनेक रुझानों को जन्म दिया और कुछ अन्य विचारों को मान्यता दी जोकि पहले से ही व्याप्त थे। चर्च की सत्ता को नकार कर मानवतावाद का विकास, कला की अभिव्यक्ति माना गया। सामंती समाज का विघटन और पूंजीवाद का आरम्भ पुनर्जागरण की विशेषताएँ रही है।

---

1 डॉ. अमरनाथ, हिन्दी भाषा की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 397

2 (सं.) पार्थ सारथि गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001, पृ.33

विश्व की महान शक्तियों चर्च, धर्म, ईसा राज्य को चुनौती दी गई, धर्म सुधार आन्दोलन हुए और बाईबल जैसे ग्रंथों की आलोचना की जाने लगी। धर्म गिरिजाघर से निकल कर आम आदमी तक पहुँचने लगा। यूरोपीय पुनर्जागरण के संदर्भ में डॉ. मीरा रानी बल का कहना है कि- ''यूरोप का मध्ययुगीन धर्म, रोमन कैथोलिक धर्म, समूचे ईसाई संसार सांस्कृतिक एकता का सूत्र था, लेकिन यह सामंतशाही का पोषक था। सामंती राज्य व्यवस्था को समर्थन प्रदान कर रोमन चर्च राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना में अड़चने खड़ी कर रहा था- इसलिए यूरोप के देशों में जनता के राष्ट्रीय जागरण ने सामंती धर्म-तन्त्र के विरुद्ध धार्मिक संघर्ष का रुप लिया।''[1]

पुनर्जागरण काल में सम्पूर्ण यूरोप में एक नई क्रांति आ गई थी। इटली के साथ-साथ अन्य देशों में जैसे- इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, स्पेन आदि में भी परिवर्तन दिखाई देने लगा। इटली में जहाँ दान्ते, पैट्रार्के, बुकाचियों आदि ने नवजागरण का बीज बोया, वहीं इंग्लैंड में शेक्सपीयर, मिल्टन, जर्मनी में मार्टिन लूथर जैसे सुधारवादी नेता फ्रांस में रोबर्ट गागिन जैसे मानवतावादी विचारकों और स्पेन में इरासमस ने नवजागरण की मशाल को जलाए रखा।

नवजागरण काल में साहित्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन आए। धार्मिक लेखन के अतिरिक्त गैर धार्मिक लेखन आरम्भ हो चुका था। मूर्तिकला, चित्रकला चर्च की दीवारों से बाहर निकलकर स्वच्छंद वातावरण में उड़ान भरने लगी थी। कलाकार मात्र ईश्वर के आदेश की पूर्ति करने वाला है, इस धारणा का अंत हुआ। देशी भाषाओं में उन्नति आरम्भ हुई।

प्रेस का उदय भी पुनर्जागरण का महत्त्वपूर्ण कारक तत्व था। आरम्भ में धार्मिक तथा बाद में गैर धार्मिक पुस्तकों की छपाई से पुस्तकों की संख्या में वृद्धि हुई। पहला प्रेस लगभग 1470 ई0 में फ्रांस के सारबोना में शराब भंडारे के तहखाने में आरम्भ

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.35

हुआ था। जर्मनी के गुटेनबर्ग ने 1477 ई0 में लकड़ी के टाइपों के स्थान पर सचल टाइपों का आविष्कार कर क्रांतिकारी भूमिका निभाई। इसके बाद यूरोप के प्रमुख नगरों में छापखाना खुल गए थे।

1.2 भारतीय नवजागरण से यूरोपीय पुनर्जागरण की भिन्नताः-

भारतीय नवजागरणः-

प्रत्येक राष्ट्र की परिस्थितियों में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। 19वीं सदी के जागरण काल में भी पराधीन भारतीय समाज में एक नवीन चेतना आई थी। यह चेतना नवीन नहीं थी, यह परिष्कृत रुप था उस चेतना का जो पहले से चली आ रही थी। प्राचीन काल से ही भारत में विभिन्न धर्म और संस्कृतियाँ आती-जाती रही है। विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय से नवचेतना आती रही है। श्री रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है कि- ''भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रान्तियाँ हुई हैं और हमारी संस्कृति का इतिहास उन्हीं चार क्रांतियों का इतिहास है। पहली क्रान्ति तब हुई जब आर्य भारत वर्ष में आए। उनका आर्योत्तर जातियों से सम्पर्क हुआ।..... दूसरी क्रान्ति तब हुई, जब महावीर और गौतम बुद्ध ने इस स्थापित धर्म या संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उपनिषदों की चिंतन धारा को खींचकर वे अपनी मनोवांछित दिशा की ओर ले गये।..... .....तीसरी क्रान्ति उस समय हुई जब इस्लाम विजेताओं के धर्म के रूप में भारत पहुँचा और इस देश में हिन्दुत्व के साथ उसका सम्पर्क हुआ और चौथी क्रान्ति हमारे अपने समय में हुई। जब भारत में यूरोप का आगमन हुआ तथा उसके सम्पर्क में आकर हिन्दुत्व एवं इस्लाम दोनों ने नवजीवन का अनुभव किया।''[1]

परन्तु भारतीय नवजागरण को लेकर अलग-अलग विद्वानों की अलग-अलग राय है। डॉ. अमरनाथ के अनुसार भी नवजागरण को लेकर भारतीय विचारकों में

---

1 रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृ.8

मतभेद है। ''भारत में नवजागरण को लेकर अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। कुछ लोग मानते है कि पहला नवजागरण गौतम बुद्ध के आविर्भाव के साथ आया। बुद्ध ने पुरानी जड़ अवधारणाओं को तोड़कर मनुष्य-मनुष्य के भीतर के भेद को मिटाया जिसका प्रभाव मध्य एशिया तक फैल गया। दूसरा नवजागरण भक्ति काल में दिखायी पड़ता है। तीसरा नवजागरण अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क में आने के बाद खास तौर पर 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के बाद शुरु हुआ जिसका केन्द्र खास तौर पर बंगाल था। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसाफिकल सोसाइटी जैसे विविध आंदोलन तथा विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षि अरविन्द आदि विचाकर इसके प्रमुख सूत्रधार थे। गुप्त युग को भी कुछ लोगों ने नवजागरण युग कहा है।''[1]

19वीं सदी के नवजागरण में भारतीय जीवन दर्शन निवृतिवाद दृष्टि से प्रवृतिवाद दृष्टि में परिवर्तित होने लगा था। प्राचीन धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सामाजिक रीति-रिवाजों पर आँख मूँद कर भरोसा करने की बजाय तर्क के निष्कर्ष पर कसकर उसका सूक्ष्म वैज्ञानिक आंकलन किया जाने लगा। इसी परिस्थिति में उस नवीन विचारधारा का जन्म हुआ जिसे 'राष्ट्रीयता' का नाम दिया गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कहना है, ''यूरोप में जन्मी हुई विचारधारा में धीरे-धीरे भारत के विचारशील लोगों को भी प्रभावित करना शुरु किया। राष्ट्रीयता भारतवर्ष के लिए नवीन विश्वास थी, इसके पहले इस देश में यह बात अपरिचित थी। राष्ट्रीयता का अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अंश है और इस राष्ट्र की सेवा के लिए, इसको धन-धान्य से समृद्ध बनाने के लिए, इसके प्रत्येक नागरिक को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए, प्रत्येक व्यक्ति को सब प्रकार से त्याग और कष्ट स्वीकार करने चाहिए।''[2]

---

1 डॉ. अमरनाथ, हिन्दी भाषा की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.216
2 हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्यः उद्‌भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.209

नवजागरण पूर्व जागरण था। जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की ललक दिखाई देने लगी थी। पुरानी बेड़ियों से मुक्ति की छटपटाहट, नयी चेतना का स्पंदन, नया जोश और नयी उमंग दिखाई पड़ती है। एक ओर ऊँच-नीच, ब्राह्मण-अब्राह्मण और छुआछुत जैसी व्यवस्था को बदलने का साहस दिखाई पड़ता है तो दूसरी तरफ सामंत विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी विचारधारा का उद्‌भव होता है। सामाजिक कुरीतियों तथा प्रथाओं के खिलाफ नवजागरण का बिगुल बजाया जाता है। सामाजिक और साहित्यिक दोनों स्तर पर परिवर्तन दिखाई देता है।

भारतीय नवजागरण और यूरोपीय पुनर्जागरण में मुख्य अंतर यह है कि जहाँ यूरोप में एक सभ्यता का पुनर्जन्म था वहीं भारत में पुनर्जन्म न होकर जागरण की नयी चेतना थी। भारतीय नवजागरण की अवधारणा यूरोप से इस बात में भी भिन्न थी कि यूरोप के देश किसी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं थे, जबकि भारत अंग्रेजों के अधीन था। यहाँ के नवजागरण में स्वदेशी राज्य, एक देशीय संस्कृति और एक जातीयता का भाव मिलता है। शम्भुनाथ का कहना है, ''भारतीय नवजागरण के अनेक दुर्भाग्यों में से एक यह भी है कि इसे सौ वर्ष से ज्यादा न मिल सके, जबकि पश्चिमी देशों को तीन-तीन, चार-चार सौ वर्ष मिले। वहाँ विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सुधारवाद, अनुभववाद, आदर्शवाद, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद आदि को पनपने का पूरा अवसर मिला। नवजागरण वहाँ विकसित राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में आया तथा स्वतंत्र राजनीतिक वातावरण में आया।''[1]

यूरोप में संगठित चर्च, कैथोलिक धर्म, ईसाई संसार से मुक्ति पाने की तीव्र आकांक्षा थी, वहीं भारत में यूरोपीय साम्राज्यवाद और सभ्यता को चुनौती देने का साहस था। यूरोप में जहाँ मानव को केन्द्र में रखकर मानवीय उत्स, ज्ञान, विवेक, विकास, स्वतंत्र चिंतन, तर्कशीलता को महत्त्व दिया गया वहीं भारत में राष्ट्र को धुरी मानकर नवजागरण की परिधि तैयार की गई। भारत में राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि रखा

---

1 शंभुनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञानभारती प्रकाशन, रूपनगर, दिल्ली, 1993, पृ.1

गया। इन्हीं तर्कों के आधार पर डॉ. मीरा रानी बल कहती हैं- ''वह राष्ट्रीय पहले है, मानवतावादी बाद में। यहाँ व्यक्ति में 'भारतीयता' तथा 'राष्ट्रीयता' की गौरव गरिमा और राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को ही जागृत कर उनका प्रतिरोपण करने का प्रयास किया गया।''[1]

यूरोप में जहाँ प्राचीन ग्रीक-लेटिन सभ्यता, ज्ञान एवं कला से प्रेरणा ग्रहण की गई थी वहीं भारत में अतीत ज्ञान, वैभव, उपलब्धियों को आधार बनाकर उनको युगानुसार पुनर्व्याख्यातित करने का प्रयास किया गया। यूरोप में विज्ञान और धर्म आमने-सामने खड़े थे। जबकि भारत में परिस्थितियाँ बिल्कुल विपरीत थीं। यहाँ धर्म और विज्ञान एक साथ खड़े थे, भारतीय नवजागरण में वेद-उपनिषदों के साथ-साथ विज्ञान का समन्वय दिखाई पड़ता है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियाँ मिली-जुली दिखाई पड़ती हैं। यूरोप में जहाँ धर्म की सत्ता थी और सामंतवाद था, वहीं भारत धर्म और सामंतवाद के साथ-साथ साम्राज्यवाद के अधीन था। 17वीं-18वीं शताब्दी में यूरोपीय विद्वानों की चिंतन परम्परा, वेदों-उपनिषदों के साथ जुड़ी थी। उपनिषदों के अन्य भाषाओं में अनुवाद हुए थे। जर्मन दार्शनिक 'शोपेन हावर' ने यह अनुवाद पढ़ा और प्रतिक्रिया दी थी परन्तु इन सबके बावजूद यूरोपीय पुनर्जागरण एक बहुत बड़ी कमी लिये हुए था।

डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, ''यूरोप का पुनर्जागरण, यूनानी संस्कृति की नई प्रेरणा, धार्मिक सुधार आन्दोलन, औद्योगिक क्रान्ति, नवीन वैज्ञानिक चिंतन- इन सबके बावजूद धार्मिक अन्धविश्वास लोकमानस में दृढ़ता से जमे हुये थे। वेदान्त ने शोपेन हावर के इन्हीं विश्वासों को उच्छिन्न कर दिया था। इन विश्वासों का सम्बन्ध सामन्ती व्यवस्था से था। वेदान्त ने उन्हें उच्छिन्न कर दिया, अतः मानना चाहिए, वेदान्त की यह भूमिका सामन्त विरोधी थी। यूरोप को देखते संयुक्त राज्य अमरीका सामंती अवशेषों से मुक्त था, परन्तु वे अंधविश्वास वहाँ भी जड़ जमाए हुये थे। 20वीं

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.36

सदी में विवेकानन्द को अमरीका में, रवीन्द्रनाथ ठाकुर को ब्रिटेन तथा समूचे पश्चिमी जगत में जो लोकप्रियता मिली, उसका मूल कारण उपनिषदों की वहीं चिंतनधारा थी जो धार्मिक रूढ़ियों से लोकमानस को मुक्त करने में सहायक थी।''[1]

यूरोप के सामंती समाज में जहाँ लोगों को जिंदा जलाने, प्राणदंड देने, स्त्रियों को डायन का दर्जा देने जैसे अंधविश्वास प्रचलित थे, वहीं भारतीय मध्यकाल में ऐसा कुछ नहीं था। यूरोप में पुनर्जागरण अथवा रिनेसाँ कहने का मुख्य कारण यही था कि यूरोप ने एक लम्बे अंधकार युग और सामंती मध्यकाल से छुटकारा पाया था। परन्तु भारत में इसे नवजागरण की संज्ञा दी गई क्योंकि यहाँ पर ऐसा अंधकार युग कभी नहीं था। यहाँ विकास के अवशेष पहले से ही विद्यमान थे, बस उसकी गति तीव्र हुई थी। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार- ''भारत में यह तथाकथित 'मध्यकाल' (लगभग तीसरी से सोलहवीं शताब्दी) का दौर ज्ञान-विज्ञान और विदेश व्यापार सहित उद्योग व्यापार की भारी उन्नति का युग था। यूरोप इस लंबे अंधकार युग से तब बाहर निकलता है जब इटली में प्राचीन यूनानी और रोमन ज्ञान-विज्ञान और साहित्य कलाओं का पुनरुद्धार होता है।''[2]

डॉ. रामविलास शर्मा जिन तर्कों के आधार पर भारत में नवजागरण को स्वीकार करते हैं अथवा नवजागरण की परिभाषा देते हैं वे बिल्कुल तर्क संगत है। क्योंकि भारत में यूरोपीय मध्यकाल जैसी स्थितियाँ कभी नहीं रहीं। यूरोपीय इतिहास दृष्टि से देखने पर निश्चित समय सीमा को मान लेने भर से कोई कालखण्ड मध्यकाल नहीं हो जाता है। क्या भारतीय मध्यकाल की प्रवृतियाँ यूरोपीय प्रवृतियों से मेल खाती है? विश्लेषणों से पता चलता है कि भारत में ज्ञान की सतत् प्रक्रिया रही है। बौद्ध, जैन, नाथ, सिद्ध और उसके बाद का सशक्त भारतीय भाषाओं का सांस्कृतिक

---

1 डॉ.रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1996, पृ.211

2 वहीं, पृ.15

आंदोलन भी है, जिसे हम भक्ति आंदोलन के नाम से जानते हैं। ज्ञान और चिंतन की परम्परा का विस्तार भक्ति आंदोलन में दिखाई पड़ता है, जिसे डॉ. शर्मा ने लोकजागरण कहा था। इस समय संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, साहित्य, दर्शन, तर्कशास्त्र और मीमांसा की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन हो गया था। यूरोपीय पुनर्जागरण और भारतीय नवजागरण में मुख्य अन्तर बताते हुए डॉ. प्रदीप सक्सेना कहते हैं, ''एक ओर यूरोपीय पुनर्जागरण में विश्व बाजार में विभिन्न रास्तों को जगह बनाते देखते हैं। डच, पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेज! दूसरी ओर भारत विश्व बाजार में अपनी जगह इस तरह नहीं बनाता। यहाँ पुनर्जागरण अनुभव किया जाता है- भाषा और साहित्य में।''[1]

यही वह दौर था जब इस्लाम और भारतीय संस्कृति का मेल होता है। भाषाओं में प्रयोग को लेकर रचनाकार सजग होते हैं। अमीर खुसरो एक बहुत बड़े उदाहरण के रुप में मौजूद है। इसी काल में उर्दू नामक भाषा का विकास होता है। इसलिए भारतीय नवजागरण एक नयी स्फूर्ति थी न कि सोई हुई जनता का जागृत होना। इसी संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह का कथन है- ''यूरोप के पास सिर्फ एक रिनेसांस है तो भारत में नवजागरणों की एक लम्बी श्रृंखला है।''[2]

1.3 लोकजागरण और नवजागरण में भिन्नताः-

15वीं सदी के जनजागरण को लोकजागरण की संज्ञा दी जाती है। भक्ति काल को लोकजागरण के अन्तर्गत लिया जाता है। यह लोकजागरण नवजागरण से भिन्न है। मूलभूत अन्तर इनकी ऐतिहासिक अन्तर्वस्तु में है। 19वीं सदी का नवजागरण जहाँ उपनिवेशवादी दौर की उपज था, वहीं 15वीं सदी का लोकजागरण सामान्य लोक से संबंधित था। नवजागरण, लोकजागरण से इस बात में भी भिन्न था कि इसके विचाकर

---

1 डॉ. प्रदीप सक्सेना, 1857 और भारतीय नवजागरण, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1996, पृ.107

2 (सं.) महेन्द्र राजा जैन, नामवर विचार कोश, नयी किताब, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2012, पृ.280

शिक्षित मध्यवर्ग से थे, जिन्हें बंगला में भद्रलोक कहा जाता है। यह भद्रलोक सामान्य भक्त कवियों की तरह घुलने मिलने वाला नहीं था।

डॉ. रामविलास शर्मा ने भक्तिकाल को लोकजागरण कहा है। डॉ. शर्मा ने समाज में चार प्रकार के नवजागरणों की चर्चा की है। ''ऋग्वेद से पहले का नवजागरण, उपनिषदों से दूसरा नवजागरण, भक्ति आंदोलन से तीसरा नवजागरण और 19वीं सदी से सम्बन्धित चौथा नवजागरण।''[1] 'भारतीय साहित्य की भूमिका' (1996) नामक पुस्तक में इन्होंने लोकजागरण की चर्चा की है। जब देश भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है तो वह आम जनता तक पहुँचता है। इसी विशेषता को बताते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि- ''भारतेन्दु युग उत्तर भारत में जनजागरण का पहला या प्रारम्भिक दौर नहीं है। वह जनजागरण की की पुरानी परम्परा का खास दौर है। जनजागरण की शुरुआत तब होती है जब बोल-चाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है।''[2]

भारतीय नवजागरण को लोकजागरण का विकास माना जाता है। भक्ति आंदोलन में शूद्र, स्त्री, किसान, कारीगर, मुसलमान बड़े पैमाने पर भाग लेते हैं। इसलिए इस आंदोलन ने व्यापक लोकजागरण का रूप लिया। सामाजिक भेदभाव और सामाजिक वैषम्य को दूर करने में भक्ति आंदोलन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भक्ति साहित्य लोकजागरण की नींव है। सिद्ध, बौद्ध, नाथ, जैन से लेकर अमीर खुसरो विद्यापति से लेकर घनानंद, पद्याकर तक कवियों में लोकजागरण की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। भक्ति साहित्य में शूद्रों और स्त्रियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। कबीर, नामदेव, नानक, रैदास से लेकर तमिलनाडु की आण्डाल, कर्नाटक की अकमा देवी,

---

1 आजकल, (सं.) सीमा ओझा, आजकलः प्रकाशन विभाग, लोधी रोड़ नई दिल्ली, अंक- 5, सितंबर, 2012, पृ.29

2 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.13

कश्मीर की लाल देवी (लल्लश्वेरी) और हिंदी प्रदेश की मीराबाई का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ. प्रदीप सक्सेना का कहना है, ''माना जा रहा है कि भारतीय पुनर्जागरण का अत्यंत सशक्त दौर भक्तिकाल है। यह पहला आधुनिक पुनर्जागरण है जिसका स्वाभाविक विकास विदेशी व्यापारी रोक देते हैं। इसे लोकजागरण कहना अधिक संगत है, क्योंकि यहाँ भी 'पुनर' के तत्व कम हैं। इस दौर की दार्शनिक उपलब्धियाँ कम महान नहीं हैं। विशेषकर निर्गुणपंथ की।''[1] 15वीं सदी में जहाँ इटली में रिनेसां हो रहा था वहीं भारत में लोकजागरण घटित हो रहा था। आधुनिक भारतीय भाषाएँ 10वीं-11वीं शताब्दी से जन्म लेने लगी थी। प्राकृत तो पहले से ही अस्तित्व में थी। कला के क्षेत्र में नया वास्तुशास्त्र और वास्तुशिल्प पैदा होने लगा था। इमारतों में गुम्बद बनाने की परम्परा आरम्भ हुई। कलात्मक रुप से दरवाजों और मंदिरों का निर्माण होने लगा था। मूर्तिकला नए ढंग से विकसित हुई। सूफी संतों द्वारा नया दर्शन 'इश्क' आरम्भ हुआ जो श्रृंगार रस से भिन्न था। यह परिवर्तन जिन लोगों ने किया वे राजा या नवाब न होकर निम्न वर्गों के लोग थे।

इसी बात को रेखांकित करते हुए आलोचक डॉ. नामवर सिंह का कहना है कि- ''यह साधारण लोगों का जागरण इटली के जागरण से हीं अधिक महान् था। ये धनी और शक्तिशाली लोगों द्वारा नहीं चलाया गया बल्कि मजदूर वर्ग के लोगों ने यह अनोखा कार्य किया।''[2] डॉ. नामवर सिंह ने अपने तर्कों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह आम लोगों का जागरण था। जो भी सामाजिक एवं लोकहित कार्य हुए वे विशेष लोगों के लिए नहीं हुए थे।

---

1 डॉ. प्रदीप सक्सेना, 1857 और भारतीय नवजागरण, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1996, पृ.117
2 कथा देश, (सं.) हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., जून-2012, पृ.8

जैसे-जैसे साहित्य में जन-भाषाओं की दखल बढ़ती जाती है वैसे-वैसे साहित्य में विशिष्टता बढ़ती जाती है। कवि विद्यापति ने लोकभाषा, जनभाषा के मधुर होने की बात कही है। तुलसीदास को संस्कृत, अवधी और ब्रज भाषाएँ आती थी, परन्तु उन्होंने जनभाषा अवधी में अपना साहित्य लिखा। कबीर वाणी जनवाणी में है। अन्य भक्तिकालीन कवियों का साहित्य भी जनवाणी में है। तभी तो इतने वर्षों के बाद भी भक्ति साहित्य आम जन को कंठस्थ है। इसी कारण से डॉ. रामविलास शर्मा ने जनभाषाओं के विकास को लोकजागरण से जोड़ा है। डॉ. शर्मा ने जनजागरण की शुरुआत तब से मानी है- 1. जब बोल-चाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है। 2. उस क्षेत्र में आधुनिक जातियों का गठन होता है। हिन्दी की जातीय भाषाओं का विकास (भक्तिकाल) 12वीं सदी में होता है और हिन्दी का विकास 19वीं सदी यानि नवजागरण काल में।

जिस प्रकार यूरोप में आधुनिकता के दो दौरों का जिक्र किया जाता है जैसे- 15वीं-16वीं सदी के पुनर्जागरण का और उसके बाद 18वीं सदी के एनलाइटमेंट (ज्ञानोदय) काल का। उसी प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा भी हिंदी साहित्य के संदर्भ में दो चरणों का जिक्र करते हैं। जैसे 12वीं सदी के लोकजागरण का और 19वीं सदी के नवजागरण का। डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने इसी बात का समर्थन करते हुए लिखा है- ''भक्तिकालीन लोकजागरण जातीय निर्माण को व्यक्त करने वाला सांस्कृतिक आंदोलन है। जिसका मुख्य स्वर सामंतवाद विरोध तथा मानवतावादी है। जबकि नवजागरण राष्ट्रीय स्वाधीनता का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन है। जिसका मुख्य स्वर साम्राज्यवाद विरोधी तथा सामंतविरोधी है।''[1]

भक्तिकाल के भक्त कवि मूलतः भक्त थे, साधु थे। ये लोग समाज के हाशिए पर थे। इनमें से अधिकतर निम्न जाति थे और अत्यंत गरीब थे। इनमें बदलाव की कामना थी और ये कार्य उन्होंने भक्ति के माध्यम से किया। इसी संदर्भ में शंभुनाथ

---

1 मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.190

का कहना है, ''अतीत में जन-उभारों तथा आंदोलनों के साथ साधारण जन की संस्कृति में भी उभार आया। रूढ़ियाँ टूटीं। खासकर भक्ति आन्दोलन और नवजागरण ने भारतीय लोकसंस्कृति के बुनियादी गुणों को उसके विभिन्न कला रूपों समेत एक बार फिर रोशनी में ला दिया। भक्ति आन्दोलन विश्वास और नवजागरण तर्क बुद्धि पर आधारित था। दोनों ने औजारों की भिन्नता के बावजूद अपनी सीमाओं में सत्ता की संस्कृति को जबरदस्त चुनौती दी।''[1] इस काल में हिन्दी की जातीय भाषाओं और अन्य देश भाषाओं में साहित्यिक रचना होने लगी थी। परन्तु नवजागरण काल में हिन्दी जातीय भाषा के रुप में विकसित हुई। इस काल के रचनाकार हाशिए के नहीं थे, अपितु वे तो समाज का नेतृत्व करते थे। इनके साथ राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन भी खड़े थे, जिन्हें इन्होंने व्यवहारिक रुप से लागू भी करवाया। इसलिए भक्ति आंदोलन उतना सफल नहीं हो सका, जितना कि नवजागरण।

भक्ति द्रविड़ो की देन है। उत्तर भारत से पहले दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन होता है। तमिल भाषा दक्षिण में सबसे पुरानी (दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) है। जिन शूद्रों को निम्न और दलित कहा जाता है उन्होंने दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन चलाया। कबीर से पहले रामानन्द ने बहुत बड़ी क्रान्ति की। भक्ति आंदोलन के दो मुख्य सूत्रधार रहे हैं- किसान और कारीगर। भक्ति साहित्य की यही विशेषता है कि इसमें कश्मीर से लेकर तमिल तक और गुजरात से लेकर बंगाल तक के किसान और कारीगरों का साहित्य है। यूरोप में जहाँ 18वीं सदी में ज्ञान-विज्ञान का आंदोलन (एनलाइटमेंट) चला, वहीं भारत में अकबर के शासन काल में ज्ञान का प्रचार हुआ, जो यूरोप से तुलना करने पर एक शताब्दी पूर्व घटित होता है। यूरोप में जो व्यापारिक पूंजीवाद का दौर था वह जातीय निर्माण को दर्शाता है। जिसे भारत में सांस्कृतिक लोकजागरण कहा जाता है। भक्ति आंदोलन के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है कि- ''तमिलनाडु (छठीं सदी ई0) और महाराष्ट्र (12वीं सदी ई0) से होते

---

1 शंभुनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञानभारती प्रकाशन, रूपनगर, दिल्ली, 1993, पृ.188

हुए यह प्रक्रिया मुगल काल में अपने उत्कर्ष पर दिखाई देती है। यहाँ भक्ति आंदोलन में यूरोप की तरह रिनेसाँ और रिफॉर्मेशन के बीच अनिवार्य टक्कर के विपरीत ये दोनो धाराएँ आपस में घुली-मिली हुई और एक-दूसरे की पूरक नजर आती है।''[1]

भक्ति आंदोलन का मुख्य स्वर सामंत विरोधी और मानवतावादी है। भक्ति काल के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास और अन्य उसी प्रकार लोकजागरण का प्रतिनिधि करते हैं जिस प्रकार इटली के 'दाँते', इसलिए इसे लोकजागरण कहा जाता है।

1.4 नवजागरण के प्रेरक तत्वः-

भारतीय नवजागरण के प्रेरक तत्वों पर विचार करने से पूर्व भारतीय नवजागरण की सामाजिक राजनीतिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है। किन परिस्थितियों में नवजागरण का विकास तीव्र हुआ। यह तो स्पष्ट हो चुका है कि भारतीय नवजागरण, पुनर्जागरण न होकर एक क्रमिक विकास की प्रक्रिया है, जो आर्यों के आगमन से आरम्भ हो जाती है। बुद्ध, महावीर से चलते हुए यह प्रक्रिया भक्ति सागर को पार करते हुए 1857 की क्रान्ति से गुजरते हुए आधुनिक युग में प्रवेश करती है। परन्तु इस सतत् निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया के पीछे कुछ सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक कारण रहे हैं। वीर भारत तलवार का कहना है, ''भारतीय नवजागरण की खासियत यूरोपीय सम्पर्क से हासिल आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को आत्मसात करके भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मुआफिक एक आधुनिक समाज बनाने की आत्मनिर्भर कोशिशों में थी।''[2]

अंग्रेजों का आगमन इन कारणों में से एक था। प्रायः ऐसा माना जाता है कि नवजागरण अंग्रेजों की देन है। अंग्रेजों ने ही आधुनिकता की शुरुआत की। यह धारणा बहुत से भारतीय और पाश्चात्य विचारकों की है। परन्तु सत्य यह है कि अंग्रेजों की

---

1 डॉ.रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1996, पृ.16

2 वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.30

पराधीनता की छात्रछाया में भारत की राष्ट्रीयता विकसित हुई। यह उनकी मजबूरी थी कि उन्होंने अपने निजी स्वार्थों के चलते भारत में आधुनिकता का आविष्कार किया। परन्तु इसके बदले में उन्होंने जो शोषण, आतंक, लूट और अमानवीय अत्याचार भारतीय जनता के साथ किए उसका इतिहास गवाह रहा है।

अंग्रेजों का आगमनः-

अंग्रेजों का भारत आगमन एक व्यापारिक संघ 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के माध्यम से हुआ। अंग्रेजों से पूर्व अन्य विदेशी व्यापारी भी डच, फ्रांसिसी, पुर्तगाली भी कपड़ों एवं मसालों के व्यापार के लिए भारत आए थे। ये लोग यहाँ से बुलियन (सोना-चाँदी) के बदले सूती-रेशमी कपड़े, मसाले ले जाते थे। ये इनके लिए बड़े लाभ का सौदा था। डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, ''अंग्रेज यहाँ व्यापारी बनकर आए, मुख्यतः अपने देश का माल बेचने वाले व्यापारी नहीं, हमारे यहाँ का माल ले जाकर अपने देश में बेचने वाले व्यापारी बनकर आए। यरूप के देशों में इस बात को लेकर प्रतिद्वन्दिता थी, भारत से व्यापार करने का इज़ारा किसके पास रहता है। इस समय भारत माल का निर्यात करने वाला प्रमुख औद्योगिक देश था, बाहर का माल वह बहुत कम खरीदता था।''[1] अंग्रेजों ने आर्थिक कारणों से भारत को अपना उपनिवेश बनाया, जो फिर साम्राज्यवाद में तब्दील हो गया। ''अंग्रेजों द्वारा भारत पर राजनीतिक आधिपत्य करने का मुख्य आकर्षण यही था कि वह ब्रिटिश साम्राज्य का औपनिवेशिक उपांग बनकर इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था और उद्योगों की समृद्धि के लिए आवश्यक खाद्य तथा कच्चे माल की संपूर्ति और ब्रिटिश उत्पादित वस्तुओं का विदेशी बाजार बन जाएँ।''[2]

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.32

2 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.49

भारत के धन-वैभव से आकृष्ट होकर ही 17वीं-18वीं शताब्दी में विदेशी व्यापारियों ने व्यापार का ठिकाना भारत को बनाया। कच्चे माल का प्रमुख केंद्र होने के साथ-साथ ब्रिटेन ने अपने तैयार माल का बाजार भी भारत को बनाया। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नष्ट करके पूंजीवादी व्यवस्था कायम की। पुरानी सामंतवादी व्यवस्था जिसमें जमीन का मालिक किसान होता था और जिसे उपज का छठा भाग राजा को कर या लगान के रुप में देना होता था, उसे समाप्त करके नया सामंतवाद स्थापित किया। इस व्यवस्था ने किसानों को मजदूर बना दिया। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, ''भारत में अंग्रेजों ने यहाँ के व्यापार का नाश करके औद्योगिकीकरण की जड़ ही काट दी। पहले यहाँ का माल खरीदकर अपने यहाँ बेचते थे, फिर खुली होड़ के बदले, कानून के सहारे यहाँ के व्यापार का गला घोंटने लगे।..... अंग्रेजी मशीने हिन्दुस्तानी दस्तकारी का मुकाबला न कर पाई थी। इसीलिए इंग्लैंड के औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने के लिए हिन्दुस्तानी माल पर कर लगाया गया था। राजकीय दबाव के जरिए-न कि खुली होड़ के जरिए- जब अंग्रेजों ने यहाँ के व्यापार और उद्योग धंधों का नाश कर दिया, तब स्वछन्द व्यापार नीति लेकर आए।''[1]

जनता से मालगुजारी वसूल करने और नियंत्रण रखने के लिए छोटे-छोटे जमींदारों को सामंत बना दिया। ये जमींदार अंग्रेजों के उसी प्रकार अधीन थे, जिस प्रकार उनके अधीन किसान। अंग्रेज जमींदारों का शोषण करते और जमींदार, किसानों का। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से पहले की भूमि व्यवस्था पर एक अंग्रेज से एक किसान ने सीधे शब्दों में कहा था- ''साहब जंगल, नदियाँ, पेड़, तालाब, सभी गाँव, तीर्थस्थान अब सरकार के हो गए हैं, उसने सब कुछ ले लिया है, हर चीज ले ली है।''[2]

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.33-34

2 उद्धृत डॉ. नगेन्द्र, भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009, पृ.341

भारत पर राजनीतिक प्रभुत्व कायम करने के लिए अंग्रेजों ने यहाँ के घरेलू ग्रामीण उद्योगों को तहस-नहस करके यहाँ की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का समूल ढाँचा नष्ट कर दिया। इंग्लैंड के कच्चे माल की आपूर्ति के लिए भारत को साधन बनाया, चाहे इसके लिए उन्होंने फिर रेल मार्गों का निर्माण करवाया या फिर सड़क मार्गों का या फिर नहरों का निर्माण करवाया। बहुत से विद्वानों का मानना है कि भारत के बौद्धिक विकास और सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आत्मनिर्भर ग्रामों का विनाश आवश्यक था, जो अंग्रेजों ने किया। इसलिए ये लोग भारत में प्रगतिशील भूमिका का श्रेय अंग्रेजों को देते हैं। परन्तु भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्राचीन काल से ही मजबूत, सुदृढ़ और अक्षुण्ण थी। जो कि अन्तर्देशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का माध्यम थी।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में विश्व में अपनी पहचान थी। भारत के अन्य राष्ट्रों से व्यापारिक संबंध थे। अंग्रेजों द्वारा भारत पर अधिकार करने के बाद भी भारत का व्यापार अन्य राष्ट्रों से हो रहा था। डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं- ''पुनर्जागरण काल के यूरोप से उसी समय के भारत की हालत अच्छी थी। यहाँ खेती और कारीगरी का अलगाँव बहुत पहले से चला आ रहा था। यहाँ व्यापार की बड़ी-बड़ी मंडियाँ आबाद थी। उनमें देशी खपत के लिए और विदेश में बिक्री के लिए भी माल इकट्ठा किया जाता था।''[1]

1853 में भारत की उपज ईरान और तुर्की होते हुए भी यूरोप पहुँच रही थी। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी, परन्तु फिर भारत के सूती माल की खपत अमेरिका और अन्य देशों में ज्यादा थी। औद्योगिक क्रांति के पहले समय में भी भारत की स्थिति अन्य यूरोपीय राष्ट्रों से अच्छी थी। यहाँ व्यापार की बड़ी-बड़ी मंडियाँ जैसे- आगरा, बनारस, मदुरई, लखनऊ आदि पहले से ही आबाद थी। ढ़ाका की मलमल

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1996, पृ.192

अपनी खूबसूरती के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध थी, परन्तु अंग्रेजों ने भारतीय उद्योगों का समूल नाश करके मशीनों से व्यापार आरम्भ किया। जिससे लाखों बुनकर और कारीगर तबाह हुए। डॉ. शर्मा कहते हैं कि- ''जोर जबरदस्ती से, धोखेबाजी से, सामंतों की मदद से गरीब किसानों को फौज में भरती करके, उन्हें अपने ही देशवासियों से लड़ाकर, अंग्रेजों ने भारत पर अधिकार किया। यहाँ के उद्योग और व्यापार का नाश किया।''[1]

ईसाई मिश्नरियों का आगमनः-

भारत में आपसी फूट, वैमनस्य और द्वेष भाव इतना अधिक था कि उसका फायदा अंग्रेजों ने उठाया। भारत पर राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों को भारत की ऐतिहासिक, सामाजिक परिस्थितियों को समझने की आवश्यकता पड़ी। जिसके लिए उन्हें भारतीय ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवाद करवाना पड़ा। इस कार्य के लिए उन्हें अंग्रेजी शिक्षा के लिए स्कूल और कॉलेज खोलने पड़े। ईसाई मिश्नरियों ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अंग्रेजी ग्रंथों का अनुवाद भारतीय भाषाओं में करवाया। अपनी धार्मिक पुस्तकों को छापने के लिए प्रेस की स्थापना की। प्रेस ने आगे चलकर नवजागरण में सराहनीय भूमिका अदा की।

ईसाई मिश्नरियों द्वारा अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दू धर्म की निन्दा की जाने लगी। हिन्दू धर्म में प्रचलित रुढ़ियों, असमानता और भेदभाव को मुद्दा बनाकर लोगों को ईसाई धर्म की तरफ आकृष्ट करना आरम्भ कर दिया। श्री रामधारी सिंह दिनकर का मत है कि- ''मनुष्य सामान्यतः यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि उसका कोई भी धर्मबन्धु अपने धर्म को छोड़कर किसी अन्य धर्म को स्वीकार करे। इस दृष्टि से ईसाईयत का प्रचार भारत में भी लोकप्रिय नहीं हुआ है। किन्तु ईसाई धर्म प्रचारकों ने भारत की नई भाषाओं की जो सेवा की वह भूलने की चीज नहीं है।

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1996, पृ.267

आवश्यकता तो उनकी अपनी थी कि यहाँ की भाषाओं को सीखकर लोगों को अपनी बात समझाएं। किन्तु यह कार्य उन्होंने बड़े मनोयोग से किया''[1]

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अनुवाद कार्यः-

19वीं शताब्दी से पहले ही पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय ज्ञान-विज्ञान, वेद, दर्शन, उपनिषद् पर कार्य कर भारतीय ज्ञान के प्रति अपनी जिज्ञासा बढ़ाई। 1774 में सर विलियम जोन्स ने 'एशियाटिक सोसाइटी' की स्थापना कर संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ जैसे- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मनुस्मृति, ऋतुसंहार आदि का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। अन्य विद्वानों जैसे- हेनरी टॉमस कोलब्रुक, अलैक्जेंडर, मिल्टन आदि ने भी भारतीय ज्ञान-विज्ञान का पुनरुद्धार किया। इसके अतिरिक्त भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण तथ्यों जैसे- सारनाथ के स्तूप की खोज, विजयनगर साम्राज्य की खोज, कल्हण की राजतंरगिणी की सूचनाएँ, सिक्कों के माध्यम से इतिहास की जानकारी दी। पाश्चात्य विद्वानों के इन सब कार्यों से भारतीयों में भी अपने ज्ञान-दर्शन को जानने की इच्छा जागी। बुद्धिजीवियों का जो वर्ग भारतीय संस्कृति को हेय और गवारू दृष्टि से देखता था, उनमें नया आत्मविश्वास आया और भारतीय भी समझने लगे कि हमने भी विश्व सभ्यता में योगदान दिया है।

सुधारवादी आंदोलनः-

तत्कालीन समाज में विभिन्न प्रकार की कुप्रथाएँ, सामाजिक कुरीतियाँ, अंधविश्वास, धार्मिक रुढ़ियाँ प्रचलित थीं। सती प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह जैसी रुढ़ियाँ व्याप्त थीं। पुरुष कई विवाह कर सकता था, परन्तु विधवा को पुनर्विवाह की अनुमति प्राप्त नहीं थी। समाज में निम्न, दलित, शूद्र और स्त्रियों की हालत दयनीय थी। स्त्री शिक्षा निषेध थी। निम्न वर्ग के लोग हर प्रकार के शोषण सहने के लिए अभिशप्त थे। 19वीं सदी के समाज सुधारकों और चिंतकों ने पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के

---

1 रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृ.457

सम्पर्क में आकर इन सामाजिक रुढ़ियों एवं प्रचलित बुराईयों की तरफ अपना ध्यान खींचा।

नवजागरण पूर्ण जागरण काल था। भारत में इसका आरम्भ बंगाल से माना जाता है, परन्तु यह सम्पूर्ण भारत में हुआ। कहीं पर पहले तो कहीं पर बाद में। राजाराम मोहन राय के ब्रह्म समाज, केशवचन्द्र सेन की प्रार्थना सभा, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती के आर्य समाज, एनी बेसेंट की थिसॉफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण परमहंस के रामकृष्ण मिशन, महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले, केशवसुत के द्वारा आया। दक्षिण भारत में तेलुगु भाषा कंडुकुरी वीरेशलिंगम पंतलु ने हितकारिणी समाज की स्थापना करके विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। केरल में नारायण गुरु ने नवजागरण की ज्योति जलाई। दलित और शोषितों के उत्थान के लिए इन्होंने विशेष रुप से कार्य किया। तमिल कवि सुब्रह्मण्यम भारती ने प्राचीन रुढ़ियों, अंधविश्वासों तथा सामाजिक नियमों के खिलाफ विद्रोह किया। वीर भारत तलवार के अनुसार, ''आधुनिक शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान का भारतीय सुधारकों पर महत्त्वपूर्ण असर परम्परा की जगह विवेक को प्रमाण मानने के रूप में सामने आया।''[1]

भारतीय नवोत्थान के आरम्भिक प्रयासों में संस्कृति, समाज, धर्म-दर्शन, जीवन-जगत से मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा से संबंधित है। इन सुधारवादी आंदोलनों ने भारतीय नवयुवकों की दिशा बदल डाली। पाश्चात्य शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आने से नई जागृति आई। जीवन के विविध क्षेत्रों में दूरगामी परिवर्तन हुए। एक नई सोच विकसित हुई जोकि तर्क और वैज्ञानिकता से युक्त थी। अंग्रेजी ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आने से भारतीय साहित्य में नई विचारधारा आई। राजा और नवाबों के लिए लिखा जाने वाला रीतिकाव्य आम लोगों के लिए लिखा जाने लगा। महाकाव्य के स्थान उपन्यास, नाटक, निबन्ध लिखे जाने लगे।

---

1 वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.120

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों में भी दो वर्ग थे- एक जो पाश्चात्य संस्कृति का समर्थक था और दूसरा आलोचक। परन्तु राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द जैसे नेताओं ने पाश्चात्य और स्वदेशी संस्कृति का समन्वय करना सिखाया। पाश्चात्य संस्कृति के प्रगतिशील विचारों को अपनाकर अपने देश के धर्म-दर्शन, रीति-रिवाजों, ज्ञान-विज्ञानों को तर्क की कसौटी पर कसना सीखा। दूसरे पाश्चात्य संस्कृति के समर्थकों की भी आँखे खुल गई। भारतीय चिंतकों रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महषि अरविंद ने भारतीय संस्कृति पर गर्व करने की भावना को जन्म दिया। विवेकानन्द ने विश्व पटल पर भारतीय संस्कृति का महत्त्व स्थापित किया।

वीर भारत तलवार के अनुसार, ''यह समझना भ्रामक होगा कि भारतीय नवजागरण सिर्फ पश्चिमी विचारों के सम्पर्क की सीधी-सरल देन था। वास्तव में यह दो विचार दृष्टियों की तकरार से पैदा हुई बैचेनी का नतीजा था। नई शिक्षा में विकसित होने वाले हर युवा भारतीयों को नए पश्चिमी ज्ञान और अपनी परम्परा के जैसा तीखा द्वंद्व महसूस होता था, वैसा पहले किसी भी दौर में नहीं हुआ। कई सुधारकों ने शिक्षा से अपने जीवन में मचने वाली खलबली और उसके क्रान्तिकारी प्रभावों की चर्चा की है।''[1]

भारतीय संस्कृति के साथ पाश्चात्य संस्कृति के मेल से आधुनिक राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय चेतना का जन्म हो रहा था। परन्तु मुख्य आधार भारतीय संस्कृति ही थी। वह संस्कृति जिससे राजाराम मोहन राय ने उपनिषदों को आधार बनाया, तो विवेकानन्द ने वेदांत का, स्वामी दयानन्द ने वेदों को आधार बनाया तो तिलक और गांधी सरीखे नेताओं ने गीता का आधार बनाया। अंग्रेजी साम्राज्यवाद ओर उपनिवेशवाद की समस्याओं ने उनके विचारों को नयी दिशा देने का कार्य किया। हिंदी साहित्य में भारतेंदु और उनके मंडल ने यह कार्य किया। शंभुनाथ का मानना है कि भारत के अलग-अलग भागों में नवजागरण को देखने की अलग-अलग प्रवृत्ति रही है। बंगाल

---

1 वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.120-21

वाले सबसे पहले नवजागरण का उद्‌भव अपने प्रान्त में स्वीकार करते हैं। हिंदी नवजागरण को हिंदी पट्टी के बाहर वाले लोग स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार महाराष्ट्र नवजागरण या तमिल नवजागरण का भी अपने-अपने जातीय विवाद रहे हैं। इसी बीच शंभुनाथ स्वीकारते हैं कि- ''पिछले लगभग पचास सालों के नवजागरण विवाद में उभरकर यह आया है कि बांग्ला नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व बुद्धिवाद है (राजाराम मोहन राय), जबकि हिंदी नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व राष्ट्रवाद है (1857 का स्वाधीनता संग्राम)। महाराष्ट्र नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व दलित चेतना (ज्योतिबा फुले) और सुधारवाद रानाडे है। तमिल नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व ब्राह्मणवाद विरोध और द्रविड़ चेतना (नायकर-पेरियार) है। इसी तरह केरल नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व दलित चेतना (नारायण गुरु) है।''[1]

1857 का विद्रोहः-

डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, ''पलासी के युद्ध के 100 साल बाद अठारह सौ सतावन की लड़ाई शुरू हुई और दो साल तक चली। अंग्रेजों के भारत से निकालने के लिए इस संग्राम में बादशाह, नवाबों, सामन्तों, जमींदारों, किसानों, बुद्धिजीवियों- जनता के प्रायः सभी वर्गों के लोगों ने भाग लिया।''[2] आधुनिक भारतीय नवजागरण 1857 के विद्रोह से आरम्भ होता है। इस विद्रोह के कारण जिस राष्ट्रीय चेतना का विकास होता है वह ब्रिटिश सरकार के खिलाफ चलने वाले संघर्षों का मूल आधार बनती है, जैसे- नील विद्रोह (1859-60), जयंतिया विद्रोह (1860-63), कूका विद्रोह (1869-72), महाराष्ट्र के किसानों का मोर्चा (1875), रंगा विद्रोह (1879-80) आदि ऐसे ही विद्रोह थे। 1857 से पहले भी विद्रोहों की एक लम्बी परम्परा दिखाई पड़ती है, परन्तु उनका राष्ट्रीय स्वरूप न होने के कारण वे अंग्रेजों द्वारा दबा दिए

---

1 डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.398

2 डॉ. रामविलास शर्मा, स्वाधीनता संग्रामः बदलते परिप्रेक्ष्य, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2003, पृ.01

गए, जैसे संन्यासी विद्रोह, आदिवासी विद्रोह, संथाल विद्रोह, भील विद्रोह, गूजरों का विद्रोह, वहाबी आंदोलन आदि। परन्तु 1857 का मुक्ति संग्राम धर्म, जाति, वर्ण को भुलाकर पूरे देश में लड़ा गया था। हिन्दू-मुस्लिम दोनों ने बहादुरशाह ज़फर को भारत का एकमात्र बादशाह मान लिया। सभी राजा, सामंत और नवाब एक झंडे के नीचे एकत्रित हो गए थे। डॉ. नगेन्द्र का कथन है- ''इन सिपाहियों में उच्च, निम्न वर्ण के हिन्दू एवं मुसलमान दोनों शामिल हो गए थे, इसलिए यह असांप्रदायिक राष्ट्रीय, सांस्कृतिक स्वाधीनता का युद्ध था। देश भर में रचित साहित्य, लोकगीतों का सार भी यही निकलता है कि, यह प्रथम मुक्ति संग्राम ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा प्रेरित सम्प्रदायवाद, धर्मवाद तथा जातिवाद की करारी हार थी।''[1]

सन् 1857 के विद्रोह को कुचलने के लिए अंग्रेजों ने हर अनैतिक तरीके अपनाए। हिंदू-मुस्लिम दंगे करवाने के लिए हर अनैतिक प्रयास किए, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। जिस 'फूट डालो राज करो' की नीति से ब्रिटिश साम्राज्य शासन कर रहा था उसकी यह करारी हार थी। डॉ. नगेन्द्र का कथन है कि- ''इस स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व फौजी वर्दी में किसान-मजदूरों ने किया और देशी राजाओं-नवाबों ने इसमें जनता की सहायता की और इस स्वाधीनता संग्राम में ऊँची जातियों का साथ भी निचली जातियों ने दिया था। अपनी मूल भावना में यह युद्ध धर्म, कर्म, जाति, संप्रदाय, प्रदेश आदि की भावना से मुक्त एक राष्ट्रीय चरित्र का संपूर्णता में वाहक था।''[2]

डॉ. प्रदीप सक्सेना का मानना है कि 1857 का विद्रोह सभी क्षेत्रों से प्रेरणा प्राप्त करता है। अपनी इसी बात का समर्थन करते हुए उन्होंने लिखा है, ''1857 की महान चेतना केवल हिन्दी प्रदेशों की वस्तु नहीं रह गई, उसे बंगाल ने अपनाया और

---

1 डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का समेकित इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009, पृ.340

2 डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का समेकित इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009, पृ.373

पंजाब ने भी। यदि खोज की जाएगी तो साम्राज्यवाद विरोधी जनमानस को बल देने वाला, समूचे राष्ट्र को लपेटने वाला यही संघर्ष उभर आएगा।''[1]

यह सामंत विरोधी जनजागरण था। उपनिवेशवादी ताकतों से सीधी टक्कर थी। इस विद्रोह ने भी उन भारतीयों की आँखें खोल दी जो अंग्रेजों का गुणगान करते नहीं थकते थे और यह समझते थे कि अंग्रेज सिर्फ व्यापार करने आए हैं। पूरे विश्व में अंग्रेजों की नीतियों का पर्दा फाश हो गया। यद्यपि इस विद्रोह को कुचल दिया गया परन्तु आगे के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया।

मुस्लिम नवजागरणः-

19वीं सदी के पूर्वार्ध तक मुस्लिम समुदाय यह अनुभव नहीं करता था कि उनका विकास हिन्दुस्तान से अलग है। परन्तु अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति से सांप्रदायिक ढंग से हिन्दू-मुस्लिम की विभाजक प्रवृत्तियों का पोषण किया। 1857 के विद्रोह में हिन्दू-मुस्लिमों ने एक-जुट होकर अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया था। ''पुनरुत्थानवाद को बढ़ावा देने वाले आंदोलनों में वहाबी आंदोलन, बंगाल का फर्जिया और उत्तर प्रदेश में देववंद स्कूल का दारुल उलूम आदि के प्रभावशाली नेताओं सईद अहमद, मोहम्मद कासिम ननौतवी गंगोही आदि ने अंग्रेज शिक्षा, भाषा, शासन के विरुद्ध, घृणा भाव जगाकर अभियान चलाया था तथा भारत को 'दारुल हरूब' बताकर शुद्ध धर्म के पुनरुत्थान का उपदेश दिया।''[2] वहाबी आंदोलन, हाजी शरीय तुल्लाह के नेतृत्व में किसान आंदोलन पहले से ही हो चुके थे।

1863 में 'मोहम्मडन लिटेरेरी सोसाइटी' की स्थापना नवाब अब्दुल लतीफ तथा 'सेंट्रल नेशनल मोहम्मडन एसोसिएशन' की स्थापना 'सैयद अमीर अली' के प्रयासों से की गई। मुसलमानों के उत्थान के लिए सर सैयद अहमद ने 'साइंटिफिक सोसाइटी' (1864) तथा 'अलीगढ़ एंग्लो मुहम्मद ओरियन्टल कॉलेज' (1875) की स्थापना की।

---

1 डॉ. प्रदीप सक्सेना, 1857 और भारतीय नवजागरण, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1996, पृ.402

2 रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृ.868-70

इंग्लैंड से लौटने पर सर सैयद ने अनुभव किया कि मुसलमान हर जगह पिछडे हुए हैं। मुस्लिम समाज में नई चेतना लाने के लिए शैक्षिक सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जागृति के लिए प्रयास आरम्भ किए।

1.5 भारतीय नवजागरण : (1857 के संदर्भ में)

भारतीय नवजागरण का आरंभ बंगाल से माना जाता है। यह नवजागरण ब्रिटिश शासन के प्रभाव से पूरे देश में फैला। इस नवजागरण में ही सुधारवाद, राष्ट्रवाद, आधुनिकीकरण जैसे सिद्धान्त प्रचलित हुए। शंभुनाथ का कहना है कि- ''विवेक कहीं जब धार्मिक रुढ़ियों से टकराता है तो राष्ट्रवाद का, प्राचीनता से टकराता है तो आधुनिकीकरण का और आर्थिक विषमता से टकराता है तो समाजवादी सिद्धान्तों का उदय और विकास होता है।..... भारत में नवजागरण की एक अन्तर्धारा सुधारवाद तथा आधुनिकीकरण के लक्ष्य को लेकर चल रही थी, नेतृत्व में थे राजा राममोहन राय... भारत में नवजागरण की एक दूसरी धारा राष्ट्रवादी मुक्ति का लक्ष्य लेकर चल रही थी। संन्यासी, संथाल, भील, पोलिगार तथा कोल विद्रोह के भीतर से जिसकी अन्तिम परिणित हुई 1857 के राष्ट्रीय विद्रोह में।''[1]

भारतीय नवजागरण का प्रमुख लक्ष्य साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद से छुटकारा पाने के साथ राष्ट्रवाद भी बन गया था। यह परिवर्तन बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और हिन्दी प्रदेश में हुआ। बंगाल, महाराष्ट्र में मुख्य परिवर्तन सुधारवाद के रुप में, हिंदी प्रदेश में राष्ट्रवाद के रुप में हुआ।

हिंदी पट्टी की यदि बात करें तो नवजागरण यहाँ साहित्य में दिखाई पड़ता है, सुधारवाद में कम। परन्तु अपने साहित्य के माध्यम हिंदी नवजागरण ने जो प्रभाव छोड़ा है, वह अद्वितीय है। इसी संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह कहते हैं- ''जिस प्रकार अन्य देशों के, अन्यत्र के नवजागरण एक बृहत्तर मानववाद या मानवतावाद के अग्रदूत

---

1 शंभुनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञानभारती प्रकाशन, रूपनगर, दिल्ली, 1993, पृ.2

रहे हैं, उसी प्रकार यह हिन्दी नवजागरण भी उस मानवतावाद का अग्रदूत रहा है।''[1] इसी नवजागरण के परिणामस्वरुप भारतेंदु और उसके सहयोगी स्त्री शिक्षा, सर्व धर्म समभाव अंतर्जातीयता, सदाचरण का प्रचार कर रहे थे और साम्राज्यवाद के विरुद्ध जाकर 'स्वत्व निज भारत गहै' का प्रसार फैला रहे थे। निःसंदेह ये 1857 के विद्रोह के परिणाम स्वरुप ही था।

1857 का विद्रोह यद्यपि असफल हो गया था, परन्तु इसकी अंतर्वस्तु इतनी मजबूत थी, जिससे अंग्रेजी शासन की नींव हिल गई थी। इन विद्रोहियों में बंगालियों सी प्रखर बुद्धि और विवेक ना सही, परन्तु साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ लड़ने का साहस अवश्य था। विद्रोह के साये में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख किसानों ने एकजुट होकर उपनिवेश के विरुद्ध 'राष्ट्र' की धारणा खड़ी की। जिसके परिणामस्वरुप भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी की जगह महारानी विक्टोरिया का शासन आ गया।

जिन पक्षों में हिन्दी नवजागरण, बंगला के नवजागरण से भिन्न था वह पक्ष थे- 1. स्वभाषा, 2. स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग और 3. भारतीय जातियों की एकता। 1882 में बंकिमचन्द्र चटर्जी 'वंदे मातरम्' लिख रहे थे तो भारतेन्दु ने 'अंग्रेज स्त्रोतं' लिखा। इकबाल ने 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' 20वीं सदी के प्रारम्भ में लिखा, परन्तु 'अजीमुल्ला खाँ' ने 'हम है इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा' 19वीं सदी के उत्तरार्ध में लिख दिया था। सामयिक समस्याओं पर भी तत्कालीन लेखकों ने जमकर लिखा। 1870 में भारतेन्दु द्वारा 'कविता वृद्धिनी' सभा की स्थापना की गई, जिसमें विभिन्न नाटक खेले जाते थे। काशीनाथ खत्री का 'बाल-विवाह' और अम्बिका दत्त व्यास का 'गौ-संकट' इसी सभा द्वारा खेले गए।

प्राचीन काल से ही देश में सांस्कृतिक एकता रही है परन्तु आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक एकता के अभाव में राष्ट्रीय चेतना 1857 के विद्रोह से पहले निर्मित नहीं हो पाई थी। राजाराम मोहन राय और भारतेंदु सरीखे नेताओं ने अपने अध्ययन

---

1 महेन्द्र राजा जैन, नामवर विचार कोश, नयी किताब, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2012, पृ.392

और यात्राओं के जरिए नए अनुभव प्राप्त किये और उनके देशप्रेम में राष्ट्रवाद भी सम्मिलित हो गया। इस राष्ट्रवाद का उद्देश्य सुधारवाद था, साम्राज्यवाद से विरोध था, स्वदेशी उत्थान था और राष्ट्रीय एकीकरण था। कर्मेन्दु शिशिर का कहना है, ''नवजागरण का ताप देश की किसी एक भाषा, एक जाति, एक समाज या विद्या में था- ऐसी बात नहीं। वह जगदीश चन्द्र बसु से भगत सिंह तक फैला हुआ था। वह तत्कालीन भारतीय भाषाओं के अलावा 'भारतीय अंग्रेजी' में था और भोजपुरी जैसी तमाम बोलियों तक अभिव्यक्त हुआ था।''[1]

1.6 हिन्दी नवजागरण का परिप्रेक्ष्यः

हिन्दी नवजागरण की सामाजिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः-

हिन्दी नवजागरण हिन्दी की जातीय गद्य परम्परा से जुड़ा है। हिन्दी प्रदेश का नवजागरण 1857 से प्रेरणा प्राप्त करता है, इसलिए इसका स्वर राष्ट्रीय है। सन् 1857 के विद्रोह में साम्प्रदायिकता का स्वरुप दिखाई नहीं पड़ता। यही इसकी मुख्य विशेषता रही। भारतेन्दु युगीन साहित्य यथा राधाचरण गोस्वामी कृत, 'यमलोक की यात्रा' प्रतापनारायण मिश्र के 'कानपुर महात्मय' राधाकृष्णदास के 'निस्सहाय हिन्दू' में 1857 के विद्रोह का अप्रत्यक्ष रुप से हवाला दिया गया है। भारतेन्दु युग के प्रत्येक लेखक की अपनी विशिष्टता रही और हिन्दी नवजागरण में विशिष्ट योगदान। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी, प्रताप नारायण मिश्र, राधामोहन गोकुल, सरदार पूर्ण सिंह, राधाकृष्ण दास, बालमुकुन्द गुप्त आदि लेखकों ने न सिर्फ हिन्दी के विकास में अपना योगदान दिया बल्कि नवजागरण की मुख्य धारा को शक्ति दी। सामाजिक रुढ़ियों तथा अंधविश्वासों के खिलाफ अंत तक संघर्ष किया। डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है कि- ''ये लेखक गद्य के लिए गद्य न लिख रहे थे, न भाषा सुधार के लिए भाषा सुधार रहे थे। भाषा उनके लिए एक साधन थी, साध्य नहीं। वह हिन्दी गद्य के रुप में सामाजिक उत्थान का एक ऐसा प्रबल शस्त्र गढ़ रहे थे, जो बिखरे हुए हिन्दी

---

1 कर्मेन्दु शिशिर, नवजागरण और संस्कृति, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2000, पृ.17

भाषियों को एक करे और उन्हें स्वाधीनता, शिक्षा और अपने जनवादी अधिकारों के लिए लड़ना सिखाए।''[1]

भारतेन्दु ने जिस जातीय गद्य की शुरुआत की उसका पहला स्वर था, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का पूर्ण विरोध और राष्ट्रीय चेतना का विकास। यद्यपि इस विरोध के साथ-साथ राजभक्ति के स्वर भी दिखाई पड़ते हैं। परन्तु ये उस युग की परिस्थितियों की देन थी। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, ''भारतेंदु की असंगतियाँ उनके युग की सीमाओं से पैदा नहीं हुई। वे उनके वर्ग की असंगतियाँ हैं, उस काजल की कोठरी की स्याही है जिसमें भारतेंदु का जन्म हुआ था।''[2] कवि वचन सुधा के संपादकीय में भारतेन्दु स्वदेशी वस्तुओं के अपनाने की वकालत करते हैं। 'तदीय समाज' की स्थापना करके उन्होंन स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने पर जोर दिया। महात्मा गांधी से 50 वर्ष पहले उन्होंने यह बात कही थी। 'राष्ट्रीय चेतना के विकास में प्राचीन सांस्कृतिक विरासत की याद दिलाते हुए अशिक्षा, पिछडेपन, रुढ़ियों और कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया।''[3] भारतेन्दु युग की जातीयता का दूसरा पहलू है- जनता से उनका जुड़ाव और सांस्कृतिक एकता। भारतेन्दु ने लोगों को लोकभाषा में लिखने को प्रेरित किया। लोकप्रचलित कथाओं को अपने नाटकों का विषय बनाया। ''भारतेंदु युग में हिन्दी गद्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस गद्य की भाषा अपवाद रुप में संस्कृत गर्भित है, समकालीन बंगला गद्य की भाषा से यह काफी भिन्न है। भक्ति साहित्य की भाषा लोकमुखी है, अधिकांश रीति साहित्य भी सरल, सहज भाषा में लिखा गया है। भारतेंदु युग के लेखकों की निगाह शहरी मध्य वर्ग के अलावा गांव के लोगों की ओर भी है।

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.146

2 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.78

3 कर्मेन्दु शिशिर, हिन्दी जातीयता और गद्य परम्परा, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2008, पृ.24

भारतेंदु हरिश्चन्द्र, बालकिशन भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त के जीवंत गद्य की परम्परा निराला और शिवपूजन सहाय के गद्य में है।"[1]

भारतेन्दु युग के लेखक सिर्फ रचनाकार ही नहीं थे, वे समर्पित पत्रकार, हिंदी उन्नायक, स्वदेशी उत्थान के समर्थक, अंधविश्वासों-रुढ़ियों के खिलाफ लड़ने वाले, प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे। सभी लेखकों ने कोई न कोई संगठन बना रखे थे। भारतेन्दु तो बनारस में ही थे, प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर में, प्रेमघन ने मिर्जापुर में, राधामोहन गोकुल ने पटना में संगठन बना रखे थे। इन संगठनों के माध्यम से जनहित के कार्य होते थे। इन लेखकों की विचारधारा एक-दूसरे से प्रभावित थी। भारतेन्दु इनके प्रेरणा स्त्रोत थे। इनका निजी हित एक ही था- राष्ट्रीय चेतना का विकास।

भारतेन्दु युग के लेखन में जातीयता का स्वर दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु ने तो भारत दुर्दशा, भारत जननी, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, अन्धेर नगरी जैसी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ तत्कालीन परिस्थितियों का उल्लेख करके राष्ट्रीय चेतना के प्रचार में लिखी। परन्तु अन्य लेखकों का गद्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है जैसे राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' 'तन-मन-धन.....' 'बूढ़े मुँह-मुहाँसे...' 'कांग्रेस की जय' बालमुकुन्द गुप्त के 'शिवशंभु के चिट्ठे' प्रेमघन के 'हिन्द, हिन्दू और हिन्दी', 'विधवा विपत्ति वर्ष' आदि ने नवजागरण कालीन चेतना को आगे बढ़ाया। भारतीय किसानों की दुर्दशा का चित्रण 'प्रेमचन्द' से बहुत पहले 'प्रेमघन' ने कर दिया था।

ये लेखक राजनीतिक रुप से भी सक्रिय थे। राधाचरण गोस्वामी, राधामोहन गोकुल और बालकृष्ण भट्ट कांग्रेस से जुड़े हुए थे। विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिए इन्होंने जी-जान लगा दी। प्रेस की आजादी के समर्थकों ने विपरीत परिस्थितियों में पत्र-पत्रिकाओं का तन-मन-धन से संपादन किया। बांकीपुर पटना की 'खडगविलास

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.42

प्रेस' ने नवजागरण में अविस्मरणीय कार्य किया। अनेक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के साथ-साथ 'भारतेन्दु ग्रंथावली' भी यहीं से छापी थी। इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं ने नवजागरण की ज्योति को गहन निराशा युग में भी जलाए रखा।

प्रायः ऐसा माना जाता है कि हिंदी नवजागरण की कोई अवधारणा ही नहीं है। भारतीय नवजागरण भी रिनेसाँ से उद्धृत माना जाता रहा है। परन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' में नवजागरण की सैद्धान्तिकी दी है। उनकी इस पुस्तक की प्रथम पंक्ति 'हिंदी प्रदेश में नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से शुरु होता है।''[1] हिन्दी नवजागरण का स्वरुप प्रस्तुत करती है। हिन्दी प्रदेश का समर्थन 1857 के विद्रोह से था। इसी बात को 'इरफान हबीब' इस तरह से कहते हैं, ''अगर कहा जाए कि सिपाही विद्रोह 1857 के महाविद्रोह का मुख्याधार था तो उतने ही निश्चयपूर्वक यह भी कहा जा सकता है कि इसका रुप इतना बड़ा नहीं हो पाता अगर हरियाणा से लेकर बिहार तक के आम नागरिकों की हार्दिक सहानुभूति न मिली होती। इन्हीं क्षेत्रों के गांवों से इन सिपाहियों की भर्ती की गई थी। इस विशाल क्षेत्र में इस विद्रोह की रंगत अख्तियार कर ली थी।''[2] इससे पहले बंगाल के नवजागरण की चर्चा होती थी, परन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने हिंदी नवजागरण को एक विशेष सैद्धान्तिकी प्रदान की। उन्होंने कहा है, ''इस तरह जो नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से आरंभ हुआ, वह भारतेंदु युग में और भी व्यापक बना, उसकी साम्राज्य विरोधी, सामंत विरोधी प्रवृत्तियाँ द्विवेदी युग में और भी पुष्ट हुई। फिर निराला के साहित्य में कलात्मक स्तर पर तथा इनकी विचारधारा में ये प्रवृत्तियाँ क्रान्तिकारी रूप में प्रकट हुई।''[3]

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.9 (भूमिका से)

2 (सं.) शंभुनाथ, 1857, नवजागरण और भारतीय भाषाएँ, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 2008, पृ.28

3 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.19 (भूमिका से)

डॉ. रामविलास शर्मा ने हिंदी नवजागरण को हिन्दी जाति से जोड़ा है। नवजागरण से पहले उन्होंने हिन्दी जाति की चर्चा की है। इससे पहले हिंदी जाति जैसे पदबन्ध का प्रचलन नहीं था। सर्वप्रथम हिंदी भाषा और जातीयता की पहचान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के लेखन में मिलती है। भारतेन्दु युग का नवजागरण पुराने नवजागरण का ही दूसरा पड़ाव है। यह नवजागरण लोक जागरण (भक्ति काल) का ही विकसित रुप है। हिंदी जातीयता की पहचान हिंदी नवजागरण से है। हिंदी जाति के अन्तर्गत हिंदू और मुसलमान दोनों ही आते हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा ने 1857 के विद्रोह को नवजागरण की पहली मंजिल मानते हुए इसका संबंध हिंदी जाति से जोड़ा है। इस संग्राम की विशेषताएँ इस प्रकार से थीः-

1. ''पूरे देश की एकता और एक सूत्रता की चिंता।
2. सामंत हित की चिंता के बजाय जनहित में राज्यसत्ता की मूल समस्या का निराकरण।
3. अंग्रेजों द्वारा जमींदारों, साहूकारों के प्रभुत्व को बढ़ावा देने की धारणा के प्रतिपक्ष में सामंत विरोधी धारणा को पुष्ट करने का ध्येय।
4. फौज में सिपाहियों, सूबेदारों के रुप में कार्यरत सर्वधर्म सकल वर्ग किसानों की अगुवाई में संग्राम।
5. सांप्रदायिक धारणाओं से मुक्त, कर्मनिष्ठ सैन्यदल का गठन।
6. हिंदी पट्टी में इस संग्राम की क्रियाशीलता।''[1]

1857 के गदर को डॉ. शर्मा ने गौरवशाली गदर कहा है, क्योंकि इस गदर में सभी ने छोटे-बड़े, हिन्दू-मुसलमान, अमीर-गरीब, सवर्ण-दलित सभी ने एकजुट होकर साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी। इसी बात का समर्थन करते हुए

---

1 आजकल, (सं.) सीमा ओझा, आजकलः प्रकाशन विभाग, लोधी रोड़, नई दिल्ली, अंक-5, 2012, पृ.31

कर्मेन्दु शिशिर कहते हैं- ''पहली बार 1857 के स्वाधीनता संग्राम में हमारे समाज का पौरुष पूरे वैभव के साथ प्रभावशाली रुप से आया और सशस्त्र विद्रोह का सिलसिला लगातार दो वर्षों तक चलता रहा।''[1]

डॉ. शर्मा ने भारतेन्दु युग को नवजागरण की दूसरी मंजिल माना है। जो कार्य भारतेन्दु और उसके साथियों ने किया वह अविस्मरणीय है। इन्होंने हिंदी गद्य को हिन्दी जाति से जोड़ा और उसे व्यापक पहचान दिलाई। यद्यपि इनके विचारों में अन्तर्विरोध मिल सकते हैं परन्तु इनका ध्येय एक ही था। इस युग के लेखक चार-पाँच भाषाएँ जानते थे।

इनके व्यंग्य की मार तिलमिला देने वाली थी। गद्य की नवीनता इस युग की विशेषता थी। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, ''भारतेंदु ने जिस संस्कृति का निर्माण किया वह जनवादी थी। उन्होंने धर्म, संस्कृति, साहित्य, शिष्टाचार पर पुराहितों-मौलवियों का इज़ारा तोड़ने के उपाय बताए। विधवा-विवाह का समर्थन किया, बाल-विवाह का विरोध किया। कुलीनता, जाति-प्रथा, छुआछुत आदि का जोरदार खंडन किया, लोगों के धार्मिक अंधविश्वासों की कड़ी आलोचना की और स्त्रीशिक्षा पर खास तौर पर जोर दिया।..... भारतेन्दु ने जिस जातीय संस्कृति की नींव ड़ाली वह सारे देश के लिए थी, लेकिन वह हिन्दी भाषी जनता के लिए विशेष थी।''[2]

प्रगतिशील विचारधारा में गद्य का रुप स्वाभाविक बोलचाल के नजदीक पाया जाता है। यही रूप भारतेन्दु युग की विशेषता है। ''भारतेन्दु और इस युग के लेखकों ने इस संघर्ष मे तटस्थ न रहकर प्रगतिशील विचारधारा को अपनाया। यह विचारधारा

---

1 कर्मेन्दु शिशिर, हिन्दी नवजागरण और जातीय गद्य परम्परा, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2008, पृ.10

2 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.94

राष्ट्रीय स्वाधीनता, जातीय एकता और जनवादी संस्कृति के उत्थान की विचारधारा थी। यह विचारधारा मनुष्य को अपनी शक्ति का भरोसा दिलाने वाली विचारधारा थी।''[1]

भारतेन्दु युग के साहित्य की मौलिकता इसी बात में थी कि वह सामन्तों, राजाओं के लिए नहीं अपितु आम जनता के लिए रचा जा रहा था। भारतेन्दु इस युग के अकेले लेखक नहीं थे। उनके समकालीन इस नई विचारधारा में उनसे भी आगे बढ़े हुए थे। द्विवेदी जी के योगदान को हिन्दी नवजागरण में अंकित करते हुए डॉ. शर्मा ने लिखा है, ''द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा के विकास के अनेक पक्षों पर ध्यान दिया। भारत में अंग्रेजी की स्थिति, भारतीय भाषाओं की समस्या, हिन्दी-उर्दू की समस्या और आपसी भेद, हिन्दी और जनपदीय उप-भाषाओं के संबंध आदि पर उन्होंने बहुत गहराई से विचार किया। भाषा परिष्कार का काम उनके व्यापक कार्यक्रम का एक अंश मात्र है और वह उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश नहीं है।''[2]

नवजागरण के तीसरे दौर के रुप में डॉ. रामविलास शर्मा ने महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियों के कार्यकाल का वर्णन किया है। सरस्वती पत्रिका का हिंदी नवजागरण में विशेष योगदान रहा है। सरस्वती पत्रिका में हिंदी प्रदेश के अतिरिक्त एशिया और यूरोप के नवजागरण की भी चर्चा की जाती थी।

जापान, चीन, तिब्बत, फिलीपिन, श्रीलंका आदि एशियाई देशों के साथ-साथ यूरोपीय देशों के नवजागरण की भी चर्चा द्विवेदी जी ने की। आचार्य द्विवेदी ने जापान का उदाहरण भारत के समक्ष प्रस्तुत किया कि कैसे अंग्रेजों का उपनिवेश हुए बिना भी कोई राष्ट्र तरक्की कर सकता है। जापानियों ने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक एकता कायम करने के लिए आपसी भेदभाव, जाति-पाति, ऊँच-नीच को भुला दिया, वैसा भारत भी कर सकता है। इसी प्रकार चीन के नवजागरण से संबंधित लेख चीन

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.148

2 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.17 (भूमिका से)

के अखबार, चीन की जागृति, चीन के समाचार पत्र आदि प्रकाशित हुए, जिसमें चीनी युवकों से प्रेरणा लेने को कहा गया। भारतीय नवजागरण और हिंदी नवजागरण का संबंध जोड़ते हुए हिंदी नवजागरण को भी इसी क्रम में रेखांकित किया है। इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा ने नवजागरण के तीसरे चरण के रुप में महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रिका सरस्वती के महत्त्व को रेखांकित किया है। डॉ. शर्मा ने नवजागरण के तीनों चरणों का महत्त्व रेखांकित किया है तो इनकी कुछ अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। 1857 के संग्राम ने नागरिक मन में उत्साह का संचार किया तो भारतेन्दु मंडल और उसके साथियों ने राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता को कायम किया तो द्विवेदी और उनके साथियों ने बौद्धिक और प्रगतिशील विचारों में क्रियाशीलता बढ़ाई।